Research Review
The Refereed Peer Reviewed International Journal
ISSN: 2321-4708

Vol. 9, Issue: 112, August, 2022
Paper ID: RR656385
https://www.researchreviewonline.com

Publishing URL: https://www.researchreviewonline.com/issues/volume-9-issue-112-august-2022/RRJ656385

।। "न्यायदर्शनाभिमत ईश्वर के अस्तित्व में प्रमाण" एक अध्ययन ।।

Dr. Yogeshkumar Trivedi

Assistant Professor

Baroda Sanskrit Mahavidyaalaya

The Maharaja Sayajirao University of Baroda

शोधसार -

प्रस्तुत शोधलेख के प्रारम्भ में विविध युक्तियो के द्वारा प्राचीन काल से चले आ रहे विभिन्न दार्शनिक तर्को के द्वारा ईश्वर के अस्तित्व की सिद्धि का वर्णन है । पाश्चात्य दार्शनिक परंपरा में सृष्टिमूलक तीन तर्क दिए हैं । कार्यमूलक-तर्क, आयोजन मूलक तथा संख्यामूलक तर्क । इस प्रकार इन तीनो तर्को के द्वारा ईश्वर की सिद्धि की है । शैवदर्शन तथा योगदर्शनआदि में भी सृष्टि के कारण के रूप मे ईश्वर को माना है । नैयायिको ने सृष्टिके कर्ता के रूप में ईश्वर को माना है क्योंकि यह ब्रह्मांड कार्य है और कार्य बिना कर्ता के संभव नही है । वह कर्ता मनुष्य नही हो सकता अत: वह जो है ईश्वर ही है ।

न्याय मत में ईश्वर के अस्तित्व में सृष्टिमूलक तथा प्रयोजनमूलक तर्क को प्रस्तुत किया है । न्यायदर्शन में ईश्वर को न केवल भोलोक का कर्ता अपि तु चतुर्दश लोक का निर्माणकर्ता माना है । इसके लिए जयंत भट्ट रचित न्यायमंजरी में तथा आचार्य उदयन द्वारा लिखित न्याय पुष्पांजलि में ईश्वरसिद्धि का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है । आचार्य उदयन नौ प्रमाण के द्वारा ईश्वर सिद्धि बताइ हैं । जिसमें कार्य, आयोजन, धृति विना पद व्यवहार प्रत्यय प्राणियों श्रुति वेद वाक्य संख्या विषय इन प्रमाणों के द्वारा ईश्वर सिद्धि को विस्तार पूर्वक बताया है प्रस्तुत शोध लेख में हमारा यह प्रयास रहा है कि इन 9 परमाणु को ध्यान में लेकर के ईश्वर सिद्धि का विशद वर्णन इसमें करने का प्रयत्न किया है आशा है कि पाठक गण को परमाणु के द्वारा ईश्वर सिद्धि करने के विषय में सहायक होगा

मुख्य शब्द : न्यायदर्शन, ईश्वर , अस्तित्व, प्रमाण, सृष्टिमूलकतर्क, कर्तृमूलकतर्क ।

भूमिका :-

Research Review
The Refereed Peer Reviewed International Journal
ISSN: 2321-4708
Vol. 9, Issue: 112, August, 2022
Paper ID: RR656385
https://www.researchreviewonline.com
Publishing URL: https://www.researchreviewonline.com/issues/volume-9-issue-112-august-2022/RRJ656385

ईश्वर के अस्तित्वका प्रश्न दर्शन के इतिहासमें अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है । पाश्चात्य एवं भारतीय दर्शनोमें इस समस्या पर विशद विवेचन किया गया है । ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिये दार्शिनिको ने विविध प्रकार की युक्तियों का सहारा लिया है, किन्तु विरोधी विचारकों ने इन तर्क का महत्त्व स्वीकार नहीं किया है । फलस्वरूप आज तक ईश्वर सम्बन्धी युक्तियों की स्थापना और खण्डन की चेष्टायें होती रही हैं ।

पाश्चात्य व अन्य दार्शनिको के तर्कप्रमाण :

पाश्चात्य दार्शनिक परम्परा में इस सन्दर्भमें चार परम्परागत तर्कों का विकास हुआ है और इन तर्कों के समर्थको और आलोचकोंने इनसे सम्बन्धित प्रश्नों पर गहनता से विचार किया है । भारतीय दर्शनमें परम्परागत तर्कों का अपेक्षाकृत अधिक विवेचन नहीं हो पाया है । इसका एक कारण सम्भवतः यह है कि परम्परागत भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों में ईश्वर सम्बन्धी मान्यता उतनी व्यापक और महत्वपूर्ण नही रही जितनी ईसाई परम्परा से प्रभावित पाश्चात्य परम्परा में उपलब्धि हैं । एक अन्य कारण यह भी हो सकता है कि भारतीय दर्शन में हमारे ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान का मुख्य स्रोत तर्क की अपेक्षा श्रुति-कोटि माना गया है । इसलिए तर्क के द्वारा ईश्वर की सत्ता सिद्ध करने की चेष्टा का प्रायः अभाव ही रहा है, न्याय और कुछ दार्शनिक सम्प्रदायों में ही तर्क द्वारा ईश्वर के अस्तित्व में प्रमाणों को प्रस्तुत किया है ।

भारतीय दर्शन में परम्परागत तर्कों का विकास एक पृथक् विषय के रूप में नहीं हुआ, क्योंकि ईश्वरीय ज्ञान का मुख्य श्रोत श्रुति को माना है, तथापि सृष्टिमूलक, प्रयोजनमूलक नैतिक तर्कों का उल्लेख यत्र तत्र हुआ है । सत्तामूलक तर्क भारतीय दर्शन में उसी रूप में उपलब्ध नहीं है जिस रूप में दार्शनिक कार्ट महोदय ने दिया है । उपरोक्त तर्कों में सृष्टिमूलक तर्क अत्यन्त प्राचीन है, यही कारण है कि सृष्टि के सम्बन्ध में अनेक तर्क वितर्क ईश्वरवादी अनीश्वरवादियों के मध्य में चले आ रहे हैं ।

अनीश्वरवादी सृष्टिमूलक तर्क के विषय में तर्क देते है कि यदि प्रत्येक कार्य का कारण होना अनिवार्य है फिर यह मानने का कोई औचित्य नहीं कि एक ही ईश्वर सम्पूर्ण विश्व के प्रति उत्तरदायी है, ईश्वरवादियों का कथन है कि अनेक ईश्वर मानने की अपेक्षा एक ईश्वर मानने की कल्पना अधिक सन्तोष

Research Review
The Refereed Peer Reviewed International Journal
ISSN: 2321-4708
Vol. 9, Issue: 112, August, 2022
Paper ID: RR656385
https://www.researchreviewonline.com
Publishing URL: https://www.researchreviewonline.com/issues/volume-9-issue-112-august-2022/RRJ656385

जनक है, यदि अनेक ईश्वरों को माना जाये तो उनके इच्छा जगत में संघर्ष उत्पन्न हो सकता है, दूसरे ईश्वर को सर्वशक्तिमान मानने की भी कोई आवश्यकता नहीं यदि वह कभी सृष्टि करता है और कभी नहीं करता है तो इसका अर्थ है कि वह किसी अन्य वस्तु अथवा व्यक्ति से सीमित है, ईश्वरवादी इस तर्क का खण्डन करते हुए कहते कि ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई लौकिक सृष्टि की रचना नहीं कर सकता, क्योंकि किसी वस्तु के निर्माण में तीन तत्त्व आवश्यक है । ''उपादान सामग्री का ज्ञान, ''उसे निर्मित करने की इच्छा एवं तदनुरूप प्रयत्न, ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति में इतने विशाल ब्रह्माण्ड की उपादान सामग्री का ज्ञान इच्छा एवं प्रयत्न नहीं देखा जाता है । अतः सृष्टि का रचयिता ईश्वर ही है ।

सृष्टि सम्बन्धी तर्क को लेकर जो संदेह उठाये जाते हैं, उनको संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है । जैसे सृष्टिमूलक तर्क वस्तुतः करणतामूलक तर्क है । यदि सृष्टि को एक न माना जाये तो उसके कारण के रूपमें ईश्वर को मानने की भी कोई आवश्यकता नहीं है । नैयायिकों का विचार है कि कोई भी वस्तु जो अनेक उपादानों से मिलकर बनती है, अनेक भौतिक पदार्थो का एक योग है । अतः वह भी एक कार्य है, और उसका कारण एक ईश्वर है । योग दर्शन में कहा गया है कि प्रत्येक वस्तु गुण से निर्मित है और ईश्वर ही केवल उनका निमित्त कारण है । उद्योतकार का विचार है कि सृष्टि का निर्माण परमाणु से हुआ है परन्तु स्वयं अचेतन है ,जैसे— भौतिक पदार्थ । अतः वे किसी चेतन एवं बुद्धिमान कर्ता से निर्देशित होते हैं ।

पाश्चात्य दार्शनिक सी. बुल्के के अनुसार सृष्टिमूलक तीन तर्क दिये है — 1) कार्यमूलक तर्क— घट आदि के समान पृथिवी भी कार्य है, अतः इस कार्यत्वहेतुक अनुमान से इस ब्रह्माण्ड कर्ता के रूप में ईश्वर के अस्तित्व में प्रमाण देते हैं । 2) आयोजनमूलक तर्क— सृष्टि के आदि में परमाणुओं का संयोजन ईश्वर के द्वारा ही होता है, किसी मनुष्य द्वारा नहीं, अत एव उस प्रयत्न का कर्ता ईश्वर ही है । 3) संख्यामूलक तर्क— द्व्यणुक परिमाण संख्याजन्य है, परिमाण और प्रत्यय से जन्य न होने पर भी जन्य परिमाण होने से, तुल्य परिमाण के दो कपालों से बने घट परिमाण से उत्कृष्ट घट परिमाण उत्पन्न होता है इसका कारण ईश्वर है ।

Research Review
The Refereed Peer Reviewed International Journal
ISSN: 2321-4708
Vol. 9, Issue: 112, August, 2022
Paper ID: RR656385
https://www.researchreviewonline.com
Publishing URL: https://www.researchreviewonline.com/issues/volume-9-issue-112-august-2022/RRJ656385

शैव दर्शन में भी सृष्टि के आधार पर ईश्वर की सत्ता सिद्ध की गयी है, उपरोक्त तर्क – वितर्क से ज्ञात होता है कि सृष्टि के आधार पर ईश्वर को सिद्ध करने का प्रयास अत्यन्त प्राचीन है। सृष्टिमूलक तर्क के समानान्तर ही भारतीय दर्शन में प्रयोजनमूलक व्याख्या मिलती है। सांख्यदर्शन में सृष्टि के प्रयोजन के विषय में तर्क देते हुए कहते हैं कि यदि ईश्वर 'आप्तकाम' है तो वह किसी इच्छा से सृष्टि प्रक्रिया में प्रवृत्त होता है, यदि यह कहा जाये कि ईश्वर परमकारूणिक है तो वह दया की भावना से सृष्टि करता है ऐसा भी नहीं स्वीकार किया जा सकता क्योंकि करूणा की भावना से सृष्टि में रत होने पर समस्त जीवों को सुखी एवं सन्तुष्ट होना चाहियें। जबकी अनेकों प्राणी कष्ट एवं दुःख से पीडित देखे जाते है, परन्तु सांख्यों का यह आक्षेप अनुचित है क्योंकि जीवों को उनके कर्मानुसार फल प्रदान करना वस्तुतः उन जीवों पर अनुकम्पा करना है,

यदि सृष्टि का कारण प्राणिमात्र के कर्म ही है तो सृष्टि का प्रयोजक कर्म ही सिद्ध होते हैं तो ईश्वर का कोई अर्थ नहीं है। सांख्यसूत्रकारने उसी बातको सूत्र[1] में स्पष्ट करते है अहंकार से संयुक्त पुरुष ही मूलतः कर्ता न होने पर भी कर्ता बन जाता है और उसी के सम्पर्क से प्रकृति के गुणों में भोग के फलस्वरूप सृष्टि-प्रक्रिया प्रारम्भ होती है, यह सृष्टि ईश्वराधीन नहीं है।

माध्व सम्प्रदाय में प्रयोजनमूलक तर्क की आलोचना करते हुए कहा गया है कि प्रयोजनमूलक तर्क से ईश्वर सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सिद्ध नहीं होता है। उसकी सत्ता का ज्ञान केवल सीमित लौकिक शिल्पी के रूपमें होता है। नैयायिक माध्वमतका खण्डन करते हुये कहते हैं कि केवल ईश्वर ही इस ब्रह्माण्ड का कर्ता हो सकते है। किसी लौकिक प्राणी के लिये यह कार्य सम्भव नहीं है। शैवदर्शन में भी प्रयोजनमूलक तर्क पाया जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि भारतीय दर्शन के अन्तर्गत सृष्टि की व्याख्या में ही उसका प्रयोजन निहित है।

भारतीय दर्शन में कर्म सिद्धान्त के आधार पर नैतिक तर्क प्रस्तुत किया गया है योग दर्शन में कहा है कि— ईश्वर समस्त कर्मो से ऊपर एवं प्राणियों को उनके कर्मानुसार फल प्रदान करने वाला है प्राचीन न्याय के परम्परा अनुसार मनुष्य कार्य करने में स्वतन्त्र है। परन्तु कर्मो के फल उसके उपर

1 'नेश्वराधिष्ठते फलनिष्पत्तिः कर्मणा तत्सिद्धेः' (सां. सू.५.२.)

Research Review
The Refereed Peer Reviewed International Journal
ISSN: 2321-4708
Vol. 9, Issue: 112, August, 2022
Paper ID: RR656385
https://www.researchreviewonline.com
Publishing URL: https://www.researchreviewonline.com/issues/volume-9-issue-112-august-2022/RRJ656385

आश्रित नहीं है । अनीश्वरवादी दर्शनो में कर्म की व्याख्या करते हुये कहा गया है कि कर्म-सिद्धान्त स्वयं से निर्देशित होता है, मनुष्य को कर्मानुसार फल प्रदान करने के लिये ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करने की कोई आवश्यकता नहीं है । परन्तु नव्यनैयायिक एवं शैवसिद्धान्त में इसका खण्डन करते हुये कहा गया है कि कर्म स्वयं में जड़ अथवा अचेतन है, अतः उसके अधिष्ठाता के रूप में ईश्वर को मानना आवश्यक है । नैयायिक इसकी तुलना करते हुये कहते हैं कि जिस प्रकार कुल्हाड़ी स्वयं लकडी काटने में समर्थ नहीं हो सकती अतः उसके छेदन करने के लिये किसी चेतन पुरूष की आवश्यकता है, उसी प्रकार अचेतन वस्तुमें कर्म हेतु चेतन ईश्वर की सत्ता अपरिहार्य है ।

अतः नैतिक तर्क के माध्यम से ईश्वर के अस्तित्व में प्रमाण सिद्ध होता है परन्तु ईश्वर करुणामय नहीं हो सकता । इसके अतिरिक्त यदि वह मनुष्यों को उनके कर्मानुसार फल प्रदान करता है तो वह एक सीमित सत्ता मात्र है, उसकी तुलना उस मन्त्री से की जा सकती है जो सर्वशक्तिमान होते हुये भी किसी राजा के अधीन है, तथापि कर्म सिद्धान्त की व्याख्या के लिये ईश्वर को स्वीकार करना अनिवार्य है, इसके अभाव में बौद्ध, जैन एवं मीमांसा का कर्म सिद्धान्त अधिक सन्तोषजनक नहीं है ।

पाश्चात्य दार्शनिकों में से अन्सेल्म एवं डेकार्ट के सत्तामूलक तर्क के अनुरूप चिन्तन वेदान्तदर्शन में नहीं किया गया है, ईश्वर के बारे में जिस सत् चित् आनन्द का वर्णन अद्वैतवेदान्त में किया गया है, वह सकारात्मक न होकर नकारात्मक है, जब हम कहते है कि ईश्वर सत् तो है परन्तु इसका तात्पर्य है कि वह असत् नहीं है, वह जड़ नहीं है इसलिये चित् है । वह दुःखरहित है, इसलिये उसे आनन्द स्वरूप कहा जाता है । वस्तुतः वह स्वयं में क्या है ? यह हम नहीं जान पाते । हम उसमें असत्, अचित् तथा दुःख का सर्वथा अभाव पाते हैं । इसीलिये उसे 'सच्चिदानन्द' कहते है । परन्तु इस तथ्य की कोई कसौटी नहीं है कि एसा केवल हम कहते हैं कि वह वस्तुतः है भी, उसकी अज्ञेयता को नष्ट करने की अर्थात् उसे जानने समझने की चेष्टा करना व्यर्थ है, वह केवल तर्क तथा प्रमाण आदि से जाना जा सकता है, परन्तु उसके स्वरूप आदि को हम नहीं जान सकते, उसे जानने की चेष्टा करना स्वयं तुलना करना है, जो कि असम्भव है ।

न्यायमते ईश्वर के अस्तित्वमें सृष्टिमूलक एवं प्रयोजनमूलकतर्क —

Research Review
The Refereed Peer Reviewed International Journal
ISSN: 2321-4708
Vol. 9, Issue: 112, August, 2022
Paper ID: RR656385
https://www.researchreviewonline.com
Publishing URL: https://www.researchreviewonline.com/issues/volume-9-issue-112-august-2022/RRJ656385

न्यायसूत्र में ईश्वर का उल्लेख आनुषंगिक रूप में हुआ है । इसीलिए प्राचीनन्याय के ईश्वरवादी होने में सन्देह किया जाता है । परन्तु किसी विषय में मौन रखना उसमें अश्रद्धा अथवा विरोध का प्रतीक नहीं है, अपितु अविश्वास हेतु उस विषय के प्रति विरुद्ध भाषण भी अनिवार्य है, उस समय सूत्रकाल में किसी विषय को अत्यन्त संक्षिप्त ढंग से व्यक्त करने की प्रथा थी । इसी कारण महर्षि गौतम ने इस सूत्र में ईश्वर को कर्मफल प्रदाता के रूपमें प्रस्तुत किया है, तथा महर्षि गौतम अपने सूत्र[2] के माध्यम से प्रकट किया है, उसके बाद के कुछ सूत्रो में ईश्वर को अदृष्ट का अधिष्ठाता मानकर संक्षिप्त विवेचना की गयी है । महर्षि गौतम अपने इसी बात को स्पष्टीकरण करते है कि —

" न पुरूषकर्माभावे फलानिष्पत्तेः" तत्कारितत्वादहेतुः" "अनिमित्ततो भावोत्पत्तिः कष्टकतैक्ष्ण्यादि दर्शनात्", अनिमित्तत्वाद् नाऽनिमित्ततः", "निमित्ताऽनिमित्तयोरर्थान्तर भावाद् प्रतिषेधः" ।।

भाष्यकालमें 'प्रशस्तपादभाष्य' व वात्सायन-भाष्य में ईश्वरका विचार किया गया है । भाष्यकाल में ईश्वर विवेचन का एक कारण यह हो सकता है कि उस समय सामान्य जन बौद्धधर्म के आदर्शो से प्रेरित होकर उसे स्वेच्छया ग्रहण कर लेते थे, परन्तु वाद में उसके कठिन त्यागमुक्त जीवन के नियमों का पालन करने में स्वयं को असमर्थ पाते थे । इस कारण भिक्षुवेश छोड़ना चाहकर भी लोकलज्जा के भय से नहीं छोड़ पाते थे जिससे उनमें अनेक विसंगतियाँ उत्पन्न हो गयी थी और बौद्धधर्म में कई विकृतियां आ गयी थी । इन्ही विसंगतियो को दूर कर पुनः वैदिक सिद्धान्तों की स्थापना करने का प्रयास न्याय द्वारा किया गया । बौद्धो के साथ संघर्ष का प्रारम्भ बुद्ध के समय से ही आरम्भ हो जाता है । इस संघर्ष ने बाद में सैद्धान्तिक भेद के अतिरिक्त दार्शनिक भेद का रूप ग्रहण कर लिया । इसमें नैयायिको का प्रमुख योगदान रहा । कुछ ऐसे प्रमाण उपलब्ध हैं जिनसे प्रतीत होता है कि इस संघर्ष की नीव महर्षि गौतम के न्यायसूत्र से पूर्व पड़ चुकी थी, क्योकि न्यायसूत्र में कतिपय स्थलों पर

[2] "ईश्वरः कारणम् – पुरूषकर्माऽऽकल्पदर्शनात्" (सू. 4-1-19)

Research Review
The Refereed Peer Reviewed International Journal
ISSN: 2321-4708
Vol. 9, Issue: 112, August, 2022
Paper ID: RR656385
https://www.researchreviewonline.com
Publishing URL: https://www.researchreviewonline.com/issues/volume-9-issue-112-august-2022/RRJ656385

बौद्धसिद्धान्तो की आलोचना की गया है । न्यायदर्शन[3] में और भाष्यमें नागार्जुन की माध्यमिक कारिका —

'न सम्भवः स्वभावस्य युक्तः प्रत्ययहेतुभिः ।

स्वभावः कृतको नाम भविष्यति कथं पुनः' ।।

वस्तुस्थिति जो हो परन्तु इतना तो कहा जा सकता है कि न्यायसूत्र में स्पष्ट उल्लेख उपलब्ध न होने पर भी आगे चलकर उद्योतकार वाचस्पतिमिश्र तथा उदयनाचार्य आदि नैयायिको ने ईश्वर के अस्तित्व में विस्तार विवेचना की । बौद्ध कल्याणरक्षित की ''ईश्वरभंग कारिका से प्रेरित होकर उदयनाचार्य ने ईश्वरसिद्धिविषयक 'न्यायकुसुमाञ्जलि'' नामक ग्रन्थ की रचना की । ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर दिया गया है कि विद्वज्जन जिसकी उपासना को स्वयं तुल्य दो अपकीर्ति अर्थात् जीवन्मुक्ति और परममुक्ति का साधन बताते हैं उसी परमात्मा का निरूपण इस पुस्तक में किया जा रहा है । इसी बात को आचार्य उदयनने अपने न्यायकुसुमाञ्जलि में उद्धृत[4] किया हैं –

सृष्टिमूलक तर्क को कारण-कार्यमूलक तर्क भी कहा जाता है । क्योंकि यह कारणता की अवधारणा पर आधारित है । यद्यपि न्यायग्रन्थों में पाश्चात्य दर्शन की भांति ईश्वर के अस्तित्व सम्बन्धी तर्को का विभाजन नहीं किया गया है तथापि नैयायिकों द्वारा प्रस्तुत तर्को में सृष्टिमूलक तर्क का विस्तृत विवेचन किया गया है, वस्तुतः न्यायदर्शन ईश्वर केन्द्रित दर्शन है । भारतीय दर्शन के अन्तर्गत आस्तिक षड्दर्शन में धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष इन चार पुरूषार्थ में विश्वास करने के कारण किसी न किसी रूपमें ईश्वर को स्वीकार करते है । उदयनाचार्य ने भी कहा हैं कि ईश्वर में प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी प्रकार से विश्वास करता है । उसी बात को न्यायकुसुमाञ्जलिकार कहते है —

3 "न स्वभावसिद्धिरापेष्टिकत्वात्' तथा व्याहत्वादयुक्तम्'' (न्या.द.39-40)

4 स्वर्गापवर्गयोर्मार्गमामनन्ति मनीषणः । यदुपस्तिमसावत्र परमात्मा निरूप्यते ।। प्रथमपद्यम् (न्या.कु.)

Research Review
The Refereed Peer Reviewed International Journal
ISSN: 2321-4708
Vol. 9, Issue: 112, August, 2022
Paper ID: RR656385
https://www.researchreviewonline.com
Publishing URL: https://www.researchreviewonline.com/issues/volume-9-issue-112-august-2022/RRJ656385

'तस्मिन्नेवं जाति-गोत्र-प्रवर-चरण-कुल-धर्मादिवदासंसार सुप्रसिद्ध्यनुभवे भगवति भवे सन्देह एव कुतः इति किं निरूपणीयं तथापि'

जो लोक न्यायदर्शन के ईश्वादी होने में सन्देह करते है, उनके विरोधमें कहा जा सकता है कि अन्य दर्शन जहाँ ईश्वर को श्रुतिगम्य ही मानते हैं, वहीं पर नैयायिक श्रुति साध्य होने के साथ ही साथ प्रमाणों के माध्यम से भी ईश्वर को सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। प्रमाणों में सर्वाधिक महत्त्व अनुमान प्रमाण को दिया गया है। उदनयाचार्य ने ईश्वर को **"प्रमणैकगम्य शिवम्"** बताकर प्रमेय की श्रेणी में ला दिया।

न्याय दर्शन में ईश्वर को सृष्टिकर्ता के रूपमें स्वीकार किया गया है, वह केवल भूलोक का ही नहीं, अपितु चतुर्दश लोक का भी निर्माण कर्ता है, वह नित्य आनन्दमूर्त्ति करूणामूर्त्ति दयामूर्त्ति स्वरूप है। वह कुम्भकार की भाँति लौकिक कर्ता ही नहीं वरन् क्लेश-कर्म आदि से रहित पुरुष विशेष है। जयन्त-भट्ट स्वकीय 'न्यायमञ्जरी' ग्रन्थ में कहते हैं

"वेद स्वपुरूषः कर्ता न हि यादृश-तादृशः।

किन्तु त्रैलोक्य-निर्माणनिपुणः परमेश्वरः।।

सदेव परमो ज्ञाता नित्यानन्द कृतान्वितः।

क्लेश-कर्म-विपाकादिपरामर्शविवर्जितः।।

ईश्वर ही इस चराचर विश्व का रचयिता है, वही जगत् का पालन कर्ता तथा संहार कर्ता है। श्रुति भी कहती है - **"द्यावा-भूमी जनयन् देव एक: विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता"** इति। सृष्टिमूलकतर्क "न्यायकुसुमाञ्जलि[5]" में उल्लेख किया है-

"कार्यायोजन-धृत्यादेः पदात् प्रत्ययतः श्रुतेः।

वाक्यात् संख्या-विशेषाच्च साध्यो विश्वविदव्ययः"।।

5. न्यायकुसुमांलि: 5/1

Research Review
The Refereed Peer Reviewed International Journal
ISSN: 2321-4708
Vol. 9, Issue: 112, August, 2022
Paper ID: RR656385
https://www.researchreviewonline.com
Publishing URL: https://www.researchreviewonline.com/issues/volume-9-issue-112-august-2022/RRJ656385

इस कारिका में ईश्वर प्रमाण के नौ रूप प्रस्तुत किये गये हैं वह इस प्रकार हैं – 1) कार्यत्व 2) आयोजन 3) धृति (आदि से....विनाश) 4) पदव्यवहार 5) प्रत्ययप्रामाण्य 6) श्रुति-वेद 7) वाक्यत्व 8) संख्या 9) विशेष ।

उपरोक्त नौ प्रमाणों में से प्रथम पांच तर्क एवं संख्याविशेष सृष्टिमूलक तर्क के अन्तर्गत रखे जा सकते है । इन नौ तर्को का क्रम बद्ध विवेचन की चर्चा करते है ।

1) कार्यत्वहेतुमूलक प्रमाण-

इस अनुमान का आधार कार्यत्व हेतुक है, अर्थात् इस अखिल चराचर संसार में जितने भी कार्य दृष्ट हैं वे सभी किसी कर्ता के द्वारा ही सम्पादित है, अनुमान स्वस्य यथा- 'क्षित्यङ्कुरादिकं सकर्तृकं कार्यत्वात् घटवत्' इस अनुमान में व्याप्ति बल से अर्थात् यत्र यत्र कार्यत्व तत्र-तत्र सकर्तृकत्व घटादि कार्य में देखा जाता है, एवं वह घटादि कार्य कर्ता कुलाल अर्थात कुम्भार है, इसी प्रकार क्षित्यङ्कुरादिरूपा जो कार्य है उस कार्य का कर्ता अस्मादि अर्थात् हम लोग नहीं हो सकते, अपितु अस्मादि से विलक्षण क्षित्यङ्कुरादि कार्य का कर्ता परमेश्वर ही है ऐसा अनुमान प्रमाण से सिद्ध करते है ।

इस अनुमान का दूसरा स्वरूप इस प्रकार बनता है — **"क्षित्यङ्कुरादिकं सकर्तृकं कार्यत्वात् घटवत्, सकर्तृकत्वं च उपादानगोचरापेक्षज्ञानचिकीर्षा-कृतिमज्जन्यत्वम्"** अर्थात् पृथिवी आदि कार्य होने के कारण सकर्तृक है । पृथिवी आदि पदार्थो का जो कर्ता है वही ईश्वर है । किसी वस्तु का कर्ता होने के लिए आवश्यक है कि कर्ता में तदनुरूप ज्ञान-इच्छा और प्रयत्न । तभी वह किसी वस्तुके निर्माण में प्रवृत्त होगा । कुलाल घटरूप कार्यके उपादान कारण मृत्तिका जल चक्र, दण्डादि का अपरोक्ष ज्ञान रखता है और जब उपरोक्त साधनों के द्वारा घट को बनाने की इच्छा रखता है साथ ही तदनुरूप प्रक्रिया में प्रवृत्ति होती है तभी वह उस घट का कर्ता बन जाता है । इसी प्रकार जगतरूप कार्य के उपादान कारण स्वरूप पृथिवी आदि के परमाणु, परमाणु से द्व्यणुक, द्वयणुक से त्रसरेणु, त्रसरेणु से स्थूल पृथिवी आदि कार्यो को उत्पन्न करने की इच्छा स्वरूप चिकीर्षा वाला एवं उसके निर्माण के लिए कृति वाला जो भी है वही जगत का कर्ता ईश्वर है, इस जगत का कर्ता किसी लौकिक प्राणी को नही माना जा सकता, क्योंकि उसके अन्दर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का ज्ञान, एवं उसे बनाने की इच्छा तथा तदनुरूप प्रयत्न का अभाव देखा

Research Review
The Refereed Peer Reviewed International Journal
ISSN: 2321-4708
Vol. 9, Issue: 112, August, 2022
Paper ID: RR656385
https://www.researchreviewonline.com
Publishing URL: https://www.researchreviewonline.com/issues/volume-9-issue-112-august-2022/RRJ656385

जाता है, अतः सम्पूर्ण दृश्य अदृश्य जगत का ज्ञान-निर्माण की इच्छा तथा प्रयत्न केवल ईश्वर में ही हो सकता है। अतः उसी को इस जगत का कर्ता स्वीकार करना चाहिए। इसी कथन को लक्षणावली पर 'प्रशस्तपादभाष्य' में उदनयाचार्य कहते है —

'स द्विविधः ईश्वरानीश्वरभेदात्, अङ्कुरादिकं सकर्तृकं कार्यत्वात् घटवदिति ईश्वरासिद्धिः। द्वितीयस्त्वहं प्रत्ययवेद्यः स च नाना व्यवस्थावचनादिति" ।।

नव्यन्याय में केवल लघुता के दृष्टिकोण से ''कृतिमत्व कर्तृत्वम्'' स्वीकार किया गया है, इसके द्वारा भी जगद् विषयक कृतिवाला अर्थात् इस चराचर विश्व को उत्पन्न करने में प्रयत्नशील जो है वही ईश्वर है।

आचार्य के अनुसार कार्यत्व हेतुक अनुमान की एक अन्य व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। 'क्रियते जन्यते शब्दो तेन'' इस व्युत्पत्ति के अनुसार उपरोक्त श्लोक में 'कार्य' पद तात्पर्य' का वाचक है, यहा तात्पर्यम् उद्देश्यम्, फलतः विशेष प्रकार की इच्छा रूप ही है क्योंकि तात्पर्य पद की व्युत्पत्ति 'तदेव परमुद्देश्यम् तस्य' इस प्रकार की है, जिस उद्देश्य से, जिस अर्थ विषयक बोध की इच्छा से जो शब्द वक्ता के द्वारा प्रयुक्त होता है वही उद्देश्य 'तत्पर' शब्द का अर्थ है, 'तत्पर' का भाव ही तात्पर्य है, इसलिए यह तात्पर्य शब्द वक्ता की इच्छा का ही बोधक है। अतः सभी वाक्यो का कुछ न कुछ तात्पर्य है। इसलिये वेदरूप वाक्यों का भी कुछ तात्पर्य होगा। यह तात्पर्य जिस पुरुष का होगा वही पुरूष परमेश्वर है - 'वेदः स्वतः तात्पर्यक:'।

'प्रमाणशब्दत्वात्' इस अनुमान के अनुसार वेदरूप वाक्य के तात्पर्य का आश्रयत्व अनित्य जड़ वस्तु में एवं 'असर्वज्ञ अस्मादिदि' में सम्भव नहीं है, अतः उक्त तात्पर्य का आश्रय ही परमेश्वर है।

3) आयोजन –

योजन का तात्पर्य 'क्रम' से है। नैयायिक सृष्टि और प्रलय की परम्परा अनन्त मानते हैं वे मीमांसक की भ्रान्ति सृष्टि के अनादि स्वरूप में विश्वास नहीं करते। उनके मत में ईश्वर के परमाणु

Research Review
The Refereed Peer Reviewed International Journal
ISSN: 2321-4708
Vol. 9, Issue: 112, August, 2022
Paper ID: RR656385
https://www.researchreviewonline.com
Publishing URL: https://www.researchreviewonline.com/issues/volume-9-issue-112-august-2022/RRJ656385

संयोजन के द्वारा ही सृष्टि की उत्पत्ति होती है । अतः प्रलय के बाद जब पुनः सृष्टि होती है, तब ईश्वर ही परमाणु संयोजक की भूमिका निभाता है । ''आयोजन'' से इस प्रकार अनुमान बनता है –

"सर्गाद्यकालीनद्व्यणुकारम्भक-परमाणुद्वयसंयोगजनकं कर्म – चेतनप्रयत्नपूर्वकं कर्तृत्वात् असंवादादि-कर्मवत्" प्रलय के पश्चात् सर्गाद्यकालीन द्वयणुक का आरम्भक परमाणुद्वयसंयोग है । उस संयोग का कारणीभूत कर्म जिस किसी भी चेतन पुरुष के प्रयत्न से जन्य है वही चेतन ईश्वर है, अर्थात् सर्गादिकालीन में द्व्यणुक को उत्पन्न करने वाला परमाणुद्वय का संयोगजनक कर्म हमारी शरीर क्रियाओं के समान कर्ता होने से चेतन प्रयत्नपूर्वक है उस समय सृष्टि के आदि में दो परमाणुओं के संयोग द्वारा द्व्यणुक को उत्पन्न करने वाला जो कर्म होता है । उसका कर्ता कोई मनुष्य नहीं हो सकता । अत एव उस प्रयत्न का कर्ता चेतन ही है वही ईश्वर है । अथवा 'आयोजन' की इस प्रकार व्याख्या की जा सकती है **'आ युज्यते संयुज्यतेऽन्योऽन्यं द्रव्यमनेनेत्यायोजनं कर्म'** इस व्युत्पत्ति के अनुसार प्रकृत 'आयोजन' शब्द का अर्थ है सृष्टि के आदि में द्व्यणुक के उत्पादक दो परमाणुओं की क्रिया जिस क्रिया से कार्य की उत्पत्ति होती है, वह क्रिया अवश्य ही किसी स्वसमानकालिक अपने का आश्रयीभूत काल में वर्तमान प्रयत्नव से उत्पन्न होती है, जैसे कि चेष्टा रूप क्रिया, सृष्टि की आदि की दोनों पारमाणुओं की उक्त क्रिया भी द्वयणुक रूप कार्य को उत्पन्न करती है । अतः उसको भी स्वसमानकालिक किसी प्रयत्न से अवश्य उत्पन्न होनी चाहिए । उस प्रयत्न के आश्रय ही परमेश्वर है, क्योंकि उक्त प्रयत्न का आश्रय हम लोग नहीं हो सकते अतः इससे यह अनुमान निष्पन्न होता है कि परमाणु आदि में किसी चेतन से अधिष्ठित होने पर ही क्रिया उत्पन्न होती है, वसुलादि की भांति ।

उदयनाचार्य के अनुसार **'परमाणवादयो हि चेतनायोजितः प्रवर्तन्ते, अचेतनत्वात् वास्यादिवत्"** न्यायकुसुमाञ्जलि ग्रन्थ में उल्लेख किया है ।

आचार्य के अनुसार आयोजन का दूसरा अनुमान इस प्रकार बनता है - **"आ सम्यग् भावेन योजनम् आयोजनमिति व्याख्यानम्"** इस व्युत्पत्ति के अनुसार ''आयोजन'' आयोजन शब्द का अर्थ है । जो जिस शब्द के अर्थ को अच्छी तरह जानता है, वही उस शब्द की अच्छी व्याख्या कर सकता है । इससे यह अनुमान निष्पन्न होता है कि वेद की व्याख्या उसके सभी अर्थो को अच्छी तरह जानने वाले

Research Review
The Refereed Peer Reviewed International Journal
ISSN: 2321-4708
Vol. 9, Issue: 112, August, 2022
Paper ID: RR656385
https://www.researchreviewonline.com
Publishing URL: https://www.researchreviewonline.com/issues/volume-9-issue-112-august-2022/RRJ656385

पुरुष के द्वारा ही की गयी है, क्योंकि वेदरूप वाक्य महाजनों के द्वारा परिगृहीत वाक्य है । अर्थात् शिष्टजन उन्हीं व्याख्यानों के अनुसार यज्ञादि का अनुष्ठान करते हैं । अखिल वेदों में निखिल सम्यग् ज्ञान का आधार ईश्वर है । इसी बात को आचार्यजी अपने न्यायकुसुमाञ्जलि ग्रन्थमें कहते है - **"वेदाः सकल वेदार्थदर्शिविज्ञापितार्थकाः महाजनानुष्ठीयमानविषयबोधक-वाक्यत्वात्" ।।**

3. धृति :—

'धृति' शब्द का अर्थ धारण करना, अर्थात् वेदों का धारण 'यो वेदाध्ययन' 'स्वाध्यायोऽध्येतव्य' इस विधिवाक्य के अनुसार गुरु-निर्देश के बिना भी स्वतन्त्र रूप से किसी ने वेदों का अध्ययन अवश्य किया था । उस अध्ययनके अनुसार ही आगे शिष्ट पुरुषों के द्वारा उस अध्ययन की परम्परा चली यह स्वतन्त्र पुरुष जिसने बिना किसी के निर्देश के वेदो की रचना की, वह परमेश्वर ही है । न्यायकुसुमाञ्जलिकारके[6] शब्दों में । 'धृति' शब्द से 'धारण' या 'ग्रहण करना' अभिप्रेत है, अतः एक अनुमान यह किया जाता है कि सकल ब्रह्माण्ड को धारण करने वाला कर्ता ईश्वर ही है, क्योंकि प्रत्येक गुरू वस्तु पतनशील होती है । परन्तु जब इसमें किसी अन्य से संयोग एवं धारक प्रयत्न रहता है तो गुरुत्व से संयुक्त द्रव्य का भी पतन नही होता है । जिस प्रकार श्येन पक्षी आकाश में उड़ते समय अपने पंजों में अपने द्वारा किया गया स्वीकार को दबाये रखता है, तब भी वह उसके विधारक प्रयत्न से गुरु होने पर भी नीचे नही गिरती है, इसी प्रकार ब्रह्माण्ड भी स्वयं में गुरुत्व संयुक्त है, लेकिन उसका पतन नहीं होता है तथा ब्रह्माण्ड में स्पर्श से युक्त किसी दूसरे द्रव्य के संयोग का भी कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है । अतः यह माना जा सकता है कि ईश्वर के धारक प्रयत्न ही उसे अपने सत्ता के द्वारा गिरने नहीं देता । ईश्वर का प्रयत्न इसलिए मानना पड़ता है कि ब्रह्माण्ड के प्रति धारक कृति का कारण अस्मदादि नहीं हो सकते । अतः ब्रह्माण्ड के पतन के प्रतिबन्धकीभूत प्रयत्न का आश्रय ईश्वर है।

4) विनाश-

6 "वेदाध्ययनं स्वतन्त्रप्रमाणपुरुषमूलकं शिष्टैरनुष्टीय मानत्वात्" इति

Research Review
The Refereed Peer Reviewed International Journal
ISSN: 2321-4708
Vol. 9, Issue: 112, August, 2022
Paper ID: RR656385
https://www.researchreviewonline.com
Publishing URL: https://www.researchreviewonline.com/issues/volume-9-issue-112-august-2022/RRJ656385

जिस प्रकार कोई निर्माण कार्य चेतन पुरुष के अधीन होकर सम्पन्न होता है । उसी प्रकार विनाश अथवा संहार कार्य भी किसी चेतनकर्ता की अपेक्षा रखता है, यथा घट पट के प्रति कुलाल तन्तुवाय कारण है उसी प्रकार खण्ड-पट की उत्पत्ति के जनक महापट का विनाश भी प्रयत्न से युक्त पुरुष से ही हो सकता है, इसी प्रकार जगत का संहार भी उपयुक्त प्रयत्न से युक्त पुरुष के लिये सम्भव नहीं है, जगत् का संहार जिस प्रयत्न से होता है, उस प्रयत्न का आश्रयत्व अस्मादादि में असम्भव है । अतः तादृश प्रयत्न का आश्रय पुरुष ही परमेश्वर है । उदयनाचार्य यही बात अनुमान-प्रमाण से सिद्ध करते है – **'ब्रह्माण्डादि-द्व्यणुकपर्यन्तं जगत् प्रयत्नवद्विनाश्यं विनाश्यत्वात् पाट्यमानपटवत्' ।**

"कार्यायोजनधृत्यादेः.... विश्वविदव्ययः" इस श्लोक में 'धृत्यादेः' पद से नाश का ही तात्पर्य है । प्रलयकाल में जब समस्त जन्य पदार्थों का अथवा जन्य द्रव्यों का विनाश होता है तो ये समस्त ब्रह्माण्ड अथवा यत्किञ्चित् ब्रह्माण्ड किसी चेतन पुरूष के प्रयत्न से ही विनशाशील है, ब्रह्माण्ड का विनाश जिस चेतन पुरूष के प्रयत्न से जन्य है । वही चेतन पुरुष ईश्वर है, क्योंकि कोई भी लौकिक प्राणी ब्रह्माण्ड के विनाश का कारण नहीं हो सकता परिशेषात् ईश्वर के प्रयत्न को ही ब्रह्माण्डनाश का कारण मानना उचित है । हरिदासी के शब्दों में 'धृत्यादेः' इत्यादिपदात् नाश-परिग्रहः, ब्रह्माण्डादि-प्रयत्नवद्विनाश्यं विनाशित्वात् पाट्यमानपटवत्'' इति ।

5) पद -

'पदात् पद्यते अनेनेति व्युत्पत्या' 'पदं' व्यवहारः, पदादिसम्प्रदायव्यवहारः स्वतन्त्र पुरुषप्रयोज्य-व्यवहारत्वात् आधुनिकलिप्यादि-व्यवहारवत्' इस प्रकार व्युत्पत्ति के आधार पर अर्थ निकलता है । घटादि पद स्वतन्त्रपुरुष से प्रयोज्य है, आधुनिक लिपि आदि के समान व्यवहार रूप होने से सृष्टि के आदि में उस घटादिसम्प्रदाय अर्थात् नाना प्रकार के पदार्थों के निर्माण की शिक्षा देने वाला कोई मनुष्य नहीं था । अत एव उस व्यवहार का प्रवर्तक ईश्वर ही हो सकता है । क्योंकि 'पट' शब्द को सुनकर लोगों को आतान-वितानभावापन्न 'पट'रूप अर्थ का ही ज्ञान होता है, न कि घट रूप अर्थका । इसी प्रकार 'घट' शब्द को सुनकर कम्बुग्रीवादिमान् घटरूप अर्थ का ज्ञान होता है, न कि पटरूप अर्थका । इस प्रकार देखने से ज्ञात होता है कि किसी भी शब्द को सुनकर उसके सही अर्थ का ज्ञान होता है । अब प्रश्न उठ

Research Review
The Refereed Peer Reviewed International Journal
ISSN: 2321-4708
Vol. 9, Issue: 112, August, 2022
Paper ID: RR656385
https://www.researchreviewonline.com
Publishing URL: https://www.researchreviewonline.com/issues/volume-9-issue-112-august-2022/RRJ656385

सकता है कि सर्वप्रथम घट पटादि शब्दों का ज्ञान किसने कराया, अवश्य ही यह किसी सर्वज्ञ एवं स्वतन्त्र पुरुष से प्रयोज्य है, यह व्यवहार प्रयोजकता जीवात्मा अर्थात् अस्मदादि में असम्भव है । अतः जो इस व्यवहार का प्रयोजक है वही स्वतन्त्र पुरुष ईश्वर है ।

उदयनाचार्य स्वकीय न्यायकुसुमाञ्जलि ग्रन्थमें इस प्रकार व्याख्यान की है - **"पद्यते गम्यते व्यवहारादयमर्थः"** इस व्युत्पत्ति के अनुसार प्रकृत में 'पद' शब्द का अर्थ है 'वृद्धव्यवहार' अर्थात् व्यवहार के अङ्गीभूत अर्थ जिससे ज्ञान हो वही पद है, इसी 'वृद्धव्यवहारस्य' पद से भी ईश्वर की सिद्धि हो सकती है, जैसे कि आधुनिक तन्तुवादय (कुविन्द) का कपड़ा बुनने का नैपुण्य किसी भी शिक्षा से ही प्राप्त होता है, नैपुण्यशिक्षा की यह परम्परा कही पर अवश्य विराम को प्राप्त होती है अर्थात् कोई ऐसा भी परिनिर्माण में कुशल पुरूष है जिसका पट निर्माण का नैपुण्य किसी अन्य निपुणतम पुरूष की शिक्षा के अधीन नहीं है, अन्यानपेक्ष नैपुण्य से युक्त वह पुरूष ही ईश्वर है । 'पद' शब्द से एक अनुमान यह भी लगाया जाता है, 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते'' इत्यादि श्रुतियों के द्वारा ईश्वर पद से जगत्कर्ता का बोध प्रसिद्ध है, इससे यह अनुमान निष्पन्न होता है कि **'ईश्वर पदं जगदुत्पादककर्तृपरम् तत्त्वेन वेदबोधितत्वात्**, अथवा वेद में प्रयुक्त 'अहम्' पद उसके स्वतन्त्र रूपसे उच्चारण करने वाले पुरूष का बोधक है, उसी प्रकार वेद में प्रयुक्त 'अहम्' पद भी स्वतन्त्र रूप से उसके उच्चारण करने वाले का ही बोधक ह, इससे यह नुमान निष्पन्न होता है कि वेदों में 'अहम्' पद स्वतन्त्र उच्चारण करने वाला पुरूष ही परमेश्वर है ।

6) संख्याविशेषः –

संख्या विशेष भी ईश्वर सिद्धिमें हेतु है, इसमे अभिप्राय है कि समान परिमाण वाले दो कपाल से एक घट उत्पन्न होता है, अत: दो कपाल से बनने वाला घट का परिमाण महत् होता है, परन्तु परमाणु के परिमाण द्व्यणुकगत परिमाण का कारण नहीं होता क्योंकि यदि अणुपरिमाण **"स्वाश्रयारब्धद्रव्यपरिमाणारम्भकं यदि भवेत्, तदा स्वसमानजातीयोत्कृष्ट-परिमाणजनकत्वनियमात् महदारब्धस्य महत्तरत्ववदणुजन्यस्याणुतरत्वप्रसङ्गात्"** वैसे ही परमाणु के अणुपरिमाण से उत्पन्न द्वयणुक का परिमाण 'अणुतर' होगा, और द्व्यणुक के अणुतर परिमाण से उत्पन्न जो त्र्यणुक का परिमाण वह अणुतम हो जायेगा तब तो 'त्र्यणुक' का प्रत्यक्ष न हो सकेगा जब

Research Review
The Refereed Peer Reviewed International Journal
ISSN: 2321-4708
Vol. 9, Issue: 112, August, 2022
Paper ID: RR656385
https://www.researchreviewonline.com
Publishing URL: https://www.researchreviewonline.com/issues/volume-9-issue-112-august-2022/RRJ656385

की त्र्यणुक का प्रत्यक्ष होता है , अतः त्र्यणुक प्रत्यक्ष के लिये त्र्यणुकगत संख्या को कारण माना गया है, एवं एकत्व संख्या का आश्रय नित्य तथा अनित्य होता है, परन्तु उससे भिन्न द्वित्व से लेकर परार्ध पर्यन्त संख्या अनित्य ही होती है, इन संख्याओं की उत्पत्ति अपेक्षा बुद्धि से होती है, '**अयमेकः, अयमेकः, इमौ द्वौ**' वह अपेक्षा बुद्धि है, यह बुद्धि किसी चेतनकर्ता में रहती हैं, सृष्टि के प्रारम्भ में परमाणुगत इस द्वित्व संख्या के कारणस्वरूप अपेक्षा बुद्धि का आश्रय केवल ईश्वर ही हो सकता है, क्योंकि सृष्टि के आदि में केवल वही अस्तित्ववान् है । न्यायकुसुमाञ्जलिकार उदयनाचार्य अपने ग्रन्थों में कहते हैं - '**सर्गाद्यकालीन परमाणुगतद्वित्वसंख्या अपेक्षाबुद्धिजन्या द्वित्वात्वात्**' इस प्रकार अनुमान प्रमाण से परमाणुगत द्वित्व संख्या का कारणस्वरूप जो संख्या और उसका कारण अपेक्षा बुद्धि, जिसका आश्रय केवल परमेश्वर ही है ।

इन सब सृष्टि मूलक तर्क एवं प्रमाणों तथा शेष अन्य तर्क तथा प्रमाण के द्वारा परमेश्वर में अस्तित्व की सिद्धि होती है, जो कि न्यायदर्शन एवं वैशेषिक-दर्शनाभिमत सिद्धान्त है ।

उपसंहार :-

इस प्रकार प्रस्तुत लेख में ईश्वर के अस्तित्व में पाश्चात्य दार्शनिकों से लेकर सभी के मतों का सविस्तर निरूपण किया है यहां पर विविध दर्शनशास्त्र अभिमत ईश्वर के अस्तित्व में श्रुतिमूलक तथा प्रयोजनमूलक तर्कों को सविस्तर प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है और इन सभी चर्चा के साथ न्यायमत में ईश्वर के अस्तित्व में विभिन्न शास्त्रों में जो तर्क दिए हैं उन तर्कों को प्रमाण के साथ प्रस्तुत किया है । इस शोधलेख में सृष्टिमूलक तथा प्रयोजनमूलक तर्क को प्रधान रूप से महर्षि गौतम एवं आचार्य उदयन के ग्रंथों को आधार बनाकर ईश्वर के अस्तित्व की सिद्धि करने का यत्न किया है ।इसमें न्यायसूत्र तथा न्यायकुसुमांजलि यह दोनों प्रमुख ग्रंथ है ।

अंत में न्याय कुसुमांजलि के पञ्चम स्तबक मे कार्य, आयोजन, धृति इत्यादिको सामने रखकर ईश्वर प्रमाण में नौ प्रकार के तर्क सविस्तर प्रस्तुत किये हैं । जैसा कि हम सभी जानते हैं ईश्वर सिद्धि के लिए न्यायशास्त्र को एक प्रधान दर्शनशास्त्र के रूप में माना जाता है और इसी बात को विभिन्न दर्शन शास्त्रों की चर्चा के साथ न्यायशास्त्र के प्रमाणको लेकर प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है ।

Research Review
The Refereed Peer Reviewed International Journal
ISSN: 2321-4708
Vol. 9, Issue: 112, August, 2022
Paper ID: RR656385
https://www.researchreviewonline.com
Publishing URL: https://www.researchreviewonline.com/issues/volume-9-issue-112-august-2022/RRJ656385

आशा है कि ईश्वर सिद्धि की जिज्ञासा में यह शोधलेख सहायता तथा आनंद प्रदान करेगा। प्राचीन काल से सभी दार्शनिकों ने भिन्न-भिन्न युक्तियों के द्वारा ईश्वर के अस्तित्व में सिद्धि की है पाश्चात्य दार्शनिक परंपरा में सृष्टिमूलक तीन तर्क दिए हैं — कार्यमूलकतर्क, आयोजनमूलकतर्क तथा संख्यामूलकतर्क। इस प्रकार इन तीन तर्को के द्वारा ईश्वर की सिद्धि की है। इसी प्रकार शैवदर्शन में तथा सांख्यदर्शन में भी यहां पर नैयायिको ने अन्य दार्शनिको का खंडन करते हुए सृष्टि के कर्ता के रूप में ईश्वर को माना है, क्योंकि यह ब्रह्मांड किसी मानव के प्रयत्न से संभव नहीं है।

न्यायमत में ईश्वर के अस्तित्व में सृष्टि मूलक तथा प्रयोजनमूलक तर्क को प्रस्तुत किया है। न्यायदर्शन में ईश्वर को न केवल भूलोक का कर्ता अपि तु चतुर्दश लोक का निर्माणकर्ता माना है। इसके लिए जयंत भट्ट रचित न्यायमंजरी तथा आचार्य उदयन द्वारा लिखित न्याय पुष्पांजलि के ईश्वर सिद्धि का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। आचार्य उदयन नौ प्रमाण के द्वारा ईश्वर सिद्धि बताइ हैं। जिसमें कार्यत्व, आयोजन, धृति विनाश, पदव्यवहार, प्रत्यय आदि प्रमाणों के द्वारा ईश्वर सिद्धि को विस्तार पूर्वक बताया है। प्रस्तुत शोधलेख में हमारा यह प्रयास रहा है कि इन नौ प्रमाण को ध्यान में लेकर के ईश्वर-सिद्धि का विशदवर्णन इसमें करने का प्रयत्न किया है। आशा है कि जिज्ञासु गण को यह शोधलेख प्रमाण के द्वारा ईश्वरसिद्धि करने तथा जानने के विषय में सहायक होगा।

संदर्भग्रन्थसूची :-

1. **न्यायकुसुमाञ्जलि चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी -1।**
2. **सर्वदर्शनसंग्रह:,चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।**
3. **सांख्यतत्वकौमुदी, ले- गजानन मुसलगांवकर, चौखम्बा संस्कृत संस्थान-वाराणसी।**
4. **न्यायदर्शन पुस्तक विद्या-मन्दिर मथुरा।**
5. **वैशेषिक दर्शन चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी।**
6. **साख्यसूत्रम्, रत्ना पब्लिकेशन्स बी. 21/42 ए, कमच्छा, वाराणसी।**
7. **न्यायसूत्रम् चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी।**